हल्दीराम भुजियावाला एवं अन्य

बनाम

आनंद कुमार दीपक कुमार एवं अन्य

28 फरवरी, 2000

[एम. जगन्नाथ राव एवं ए.पी. मिश्रा, जे. जे.]

भागीदारी अधिनियम, 1932 : धारा 59(2).

अपंजीकृत फर्म द्वारा मुकदमा - की रखरखाव- अपंजीकृत फर्म ने प्रतिवादीगण को उसके ट्रेडमार्क का उल्लंघन करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर किया - यह मुकदमा वादी के सामान्य कानून और संविदात्मक अधिकारों पर आधारित था- प्रतिवादीगण ने आदेश 7 नियम 11 जाब्ता दीवानी के तहत वाद को नामंजूर करने के लिए आवेदन इस आधार पर दायर किया कि मुकदमा धारा 69(2) के अंतर्गत वर्जित है- माना : जब दावा सामान्य विधि पर आधारित हो तो वह धारा 69(2) के अंतर्गत वर्जित नहीं है- इसलिए, उच्च न्यायालय ने आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, आदेश 7 नियम 11 -व्यापार और व्यापारिक चिह्न अधिनियम, 1958.

"एक अनुबंध से उत्पन्न" - का अर्थ- माना: शब्द एक अपंजीकृत फर्म द्वारा तीसरे पक्ष के प्रतिवादियों के साथ अपने व्यापारिक व्यवहार के दौरान तीसरे पक्ष के प्रतिवादियों के साथ किए गए अनुबंध को संदर्भित करते हैं - ये शब्द संदर्भित अनुबंध पर वाद में केवल एक एतिहासिक तथ्य के रूप में लागू नहीं होते हैं।

अपंजीकृत फर्म द्वारा मुकदमा - का दायर- धारा 69(2) के तहत रोक -के विरूद्ध उपाय- माना: वादी अनुमति के साथ वाद वापस ले सकता है और परिसीमा के कानून के अधीन फर्म में पंजीकरण के बाद नया मुकदमा दायर कर सकता है- ऐसा तब ही होता है जब दावे को परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के मद्देनजर ऑपचारिक दोष के लिए खारिज कर दिया गया हो- परिसीमा अधिनियम 1963, धारा 14

व्यापार चिह्न- पासिंग ऑफ कार्रवाई- के विरूद्ध मुकदमा दायर करना- अपंजीकृत फर्म द्वारा- माना: पासिंग ऑफ कार्रवाई अपकृत्य पर आधारित एक सामान्य कानून कार्रवाई है- इसलिए अपंजीकृत फर्म द्वारा मुकदमा दायर किया जा सकता है और वह भागीदारी अधिनियम की धारा 69 (2) द्वारा वर्जित नहीं है।

क़ानून की व्याख्या

बाहरी सहायता- विशेष समितियों की रिपोर्ट- के इस्तेमाल- किसी अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए- अनुमेयता- माना : अनुमेय- विशेष रूप से जब प्रावधान अस्पष्ट हों।

शब्द और वाक्यांश :

"एक अनुबंध से उत्पन्न होना"- का तात्पर्य- भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 (2) के संदर्भ में। "अन्य कारण की प्रकृति की तरह- का तात्पर्य- परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के संदर्भ में।

प्रत्यर्थी-वादीगण ने अपीलकर्ता-प्रतिवादीगण के साथ एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म का गठन किया और इसका ट्रेडमार्क, ट्रेडमार्क के रजिस्टर के समक्ष पंजीकृत करवाया। इसके बाद, साझेदारी फर्म को भंग कर दिया गया और विघटन विलेख की शर्तों के तहत ट्रेडमार्क पूरे देश में, एक राज्य को छोड़कर, प्रत्यर्थी-वादी के हिस्से में आ गया, जबकि उसके लिए ट्रेडमार्क अधिकारों का स्वामित्व अपीलकर्ता-प्रतिवादीगण को दिया गया। उक्त पंजीकृत ट्रेडमार्क सामान्यतः सात वर्षों के लिए नवीनीकृत किया गया था। प्रत्यर्थीगण ने पूर्व अभिग्रहण करने और लंबे उपयोगकर्ता के कारण उक्त ट्रेडमार्क पर अधिकार भी हासिल कर लिया।

प्रत्यर्थीगण-वादीगण को पता चला कि अपीलकर्ता-प्रतिवादीगण ने उस राज्य के बाहर किसी स्थान पर उक्त ट्रेडमार्क का उपयोग करके व्यवसाय शुरू किया- इसलिए, प्रत्यर्थीगण ने उच्च न्यायालय में एक मुकदमा दायर कर अपीलकर्ताओं को उक्त ट्रेडमार्क का उल्लंघन करने और उसका उपयोग करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की। मुकदमे के लिए वाद कारण यह था कि प्रतिवादीगण ने सामान्य विधि और वादी के संविदात्मक अधिकारों का उल्लंघन किया था। अपीलकर्ताओं-प्रतिवादीगण ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 नियम 11 के तहत वाद को नामंजूर करने के लिए एक आवेदन इस आधार पर पेश किया कि प्रत्यर्थीगण-वादीगण की साझेदारी फर्म अपंजीकृत थी और भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 (2) मुकदमे के रखरखाव में बाधा थी। उच्च न्यायालय ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया। इसलिए यह अपील।

अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि मुकदमा एक अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने की मांग करता है यथा, विघटन विलेख और चूंकि फर्म अपंजीकृत थी इसलिए मुकदमा अधिनियम की धारा 69 (2) द्वारा वर्जित था।

प्रत्यर्थीगण की ओर से यह तर्क दिया गया कि मुकदमा सामान्य विधि अधिकारों में पासिंग ऑफ कार्रवाई पर आधारित था; कि विघटन

विलेख केवल एक ऐतिहासिक तथ्य का संदर्भ था; यह मुकदमा अपीलकर्ताओं और प्रत्यर्थीगण के बीच किसी अनुबंध पर आधारित नहीं था और, इसलिए, अधिनियम की धारा 69 (2) लागू नहीं होती है क्योंकि जो अधिकार लागू करने की मांग है वह अपीलकर्ताओं और प्रत्यर्थीगण के बीच किसी अनुबंध से उत्पन्न नहीं हुआ।

न्यायालय इस अपील खारिज करते हुए,

माना: **1.1.** यदि कोई वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून अधिकार लागू किया जा रहा है तो साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 (2) द्वारा किसी मुकदमे पर रोक नहीं है।

राप्टोकास ब्रेट कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश प्रॉपर्टी [1988] 7 एससीसी 184, की निर्भरता पर।

1.2. अगला प्रश्न इस मुकदमे में लागू किये जा रहे अधिकार की प्रकृति के बारे में है। यह सुस्थापित है कि पारितोषिक कार्रवाई अपकृत्य पर आधारित एक सामान्य विधि की कार्रवाई है। इसलिए, प्रतिवादी को वादी के ट्रेडमार्क का उपयोग करके प्रतिवादी के सामान को वादी के सामान के रूप में हस्तांतरित न करने और क्षतिपूर्ति के लिए स्थायी निषेधाज्ञा का मुकदमा सामान्य कानून की कार्रवाई है और अधिनियम की धारा 69 (2) द्वारा वर्जित नहीं है।

बंगाल वॉटरप्रूफ लिमिटेड बनाम बॉम्बे वॉटरपूफ मैन्युफैक्चरिंग कंपनी, [1997] 1 एससीसी 99, की निर्भरता पर।

वीरेंद्र ड्रेसेस, दिल्ली बनाम वरिंदर गारमेंट्स, एआईऔर (1982) डीईएल 482 और बेस्टोकेम फॉर्मूलेशन बनाम दिनेश आयुर्वेदिक एजेंसीज, औरएफए (ओएस) 17/99 दिनांक 12-07-1999 (डीईएल), (डीबी), अनुमोदित।

1999 की एसएलपी संख्या 18418 (निर्णय दिनांक 28-01-2000) संदर्भित।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्यारे लाल कुमार, [1952] एससीऔर 501, को अनुपयुक्त माना गया।

1.3. इसी तरह, यदि किसी पंजीकृत ट्रेडमार्क और उसके उल्लंघन के आधार पर स्थायी निषेधाज्ञा या क्षति की राहत का दावा किया जा रहा है तो मुकदमे को व्यापार और व्यापारिक चिह्न अधिनियम, 1958 के तहत वैधानिक अधिकार के आधार पर माना जाना चाहिए और अधिनियम की धारा 69 (2) से वह वर्जित नहीं है। इसलिए, मौजूदा मामले में अपंजीकृत साझेदारी को अनुबंध से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को लागू करने वाला नहीं कहा जा सकता है।

2.1. यह निर्धारित करने के लिए कि विधायिका का क्या मतलब रहा होगा जब धारा 69 (2) में "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों का प्रयोग किया गया, यहां विशेष समिति (1930-31) की रिपोर्ट का संदर्भ लेना उपयोगी होगा।

2.2. इस न्यायालय द्वारा अपने विभिन्न निर्णयों में समान समितियों या आयोगों की रिपोर्टों का उल्लेख किया है। इसके अलावा, धारा 69 (2) (1916 और 1985 के अंग्रेजी क़ानून के भिन्न) में काफी अस्पष्टता है कि "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों का क्या मतलब है क्योंकि प्रावधान यह नहीं बताता है कि धारा 69 (2) में अनुबंध फर्म द्वारा प्रतिवादी के साथ किया गया है या किसी अन्य व्यक्ति के साथ किया गया है जो प्रतिवादी नहीं है, न ही यह व्यवसाय में प्रतिवादी के साथ किया गया अनुबंध है या व्यवसाय से असंबद्ध है। इसलिए, धारा 69 (2) की व्याख्या के उद्देश्य से भी रिपोर्ट पर गौर करना स्वीकार्य है।

आर.एस. नायक बनाम ए.और. अंतुले, (1984) 2 एससीसी 183 और हैदराबाद इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1995) 5 एससीसी 15, पालन किया।

पी.वी. नरसिम्हाराव बनाम राज्य (1998) 4 एससीसी 626, की निर्भरता पर।

सीआईटी बनाम जयलक्ष्मी राइस एंड ऑयल मिल्स कॉन्ट्रैक्टर कंपनी, (1971) 1 एससीसी 280, अब अच्छा कानून नहीं है।

पेपर बनाम हार्ट (1993) 1 ऑल ईऔर 42 (एचएल) और जी.पी. सिंह, "संविधि की व्याख्या" 7 वां संस्करण (1999) पीपी. 196-97, संदर्भित।

3. विशेष समिति की रिपोर्ट के आधार पर ही भागीदारी अधिनियम, 1932 को बाद में विधानमंडल द्वारा पारित किया गया था। उक्त रिपोर्ट और अंग्रेजी अधिनियम के प्रावधान अर्थात व्यवसाय नाम पंजीकरण अधिनियम, 1916 और व्यवसाय नाम अधिनियम, 1985 यह स्पष्ट करते हैं कि धारा 69 (2) के पीछे का उद्देश्य अपंजीकृत फर्म या इसके साझेदारों पर फर्म के व्यापारिक लेनदेन के दौरान तीसरे पक्ष प्रतिवादी के साथ वादी फर्म द्वारा किए गए अनुबंधों से उत्पन्न होने वाले अधिकारों को लागू करने के लिए विकलांगता लागू करना था।

राप्टोकास ब्रेंट कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश प्रॉपर्टी, (1998) 7 एससीसी 184, की निर्भरता पर।

मुल्ला साझेदारी अधिनियम, प्रथम संस्करण (1934) पीपी. 176-177 और हैल्सबरी : क़ानून चौथा संस्करण। वॉल्यूम. 48 पी. 101, संदर्भित।

4.1. आगे और अतिरिक्त लेकिन समान रूप से महत्वपूर्ण पहलू यह है कि धारा 69(2) में निर्दिष्ट अपंजीकृत फर्म द्वारा अनुबंध न केवल फर्म द्वारा तीसरे पक्ष प्रतिवादी के साथ किया जाना चाहिए, बल्कि वादी की फर्म के साथ व्यापारिक लेनदेन के दौरान वादी फर्म द्वारा भी किया जाना चाहिए।

4.2. वर्तमान प्रतिवादी जिन पर वादी फर्म द्वारा मुकदमा दायर किया गया है वे पहले वादी फर्म के लिए "तीसरे पक्ष" हैं। अधिनियम की धारा 2(डी) तीसरे पक्ष को ऐसे व्यक्तियों के रूप में परिभाषित करती है जो फर्म के भागीदार नहीं हैं। वर्तमान मामले में प्रतिवादी भी विघटन के अनुबंध के संबंध में तीसरे पक्ष हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी मां विघटन के अनुबंध में एक पक्ष थी। प्रतिवादी केवल उस अधिकार का दावा कर रहे हैं जो उक्त अनुबंध के तहत उनकी मां को और फिर प्रतिवादीगण को प्राप्त हुआ है। वास्तव में, विघटन का उक्त अनुबंध ऐसा कोई अनुबंध नहीं है जिसमें वर्तमान प्रथम वादी फर्म या उसके भागीदार या दूसरा वादी भी पक्षकार हो। उनके पिता एक पक्षकार थे और ट्रेडमार्क पर उनका अधिकार वादी को हस्तांतरित हो गया। प्रश्न का वास्तविक सार यह है कि विधायिका ने जब धारा 69 (2) में "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों का उपयोग

किया है तो वह अपंजीकृत वादी फर्म द्वारा अपने ग्राहकों-प्रतिवादीगण के साथ व्यावसायिक लेनदेन के दौरान किए गए अनुबंध का उल्लेख कर रही है और इसका उद्देश्य वाणिज्य में उन लोगों की रक्षा करना है जो व्यवसाय में ऐसी साझेदारी फर्म के साथ सौदा करते हैं। ऐसे तीसरे पक्ष जो साझेदारों के साथ सौदा करते हैं उन्हें व्यापार में सौदा करने से पहले यह जानने में सक्षम होना चाहिए कि फर्म के साझेदारों के नाम क्या हैं।

5.1. इसके अतिरिक्त, धारा 69 (2) फर्म के स्वामित्व वाली संपत्ति के स्वामित्व के स्रोत के रूप में वाद में उल्लिखित किसी भी अनुबंध पर लागू नहीं होती है। यदि वादपत्र में ऐसे किसी अनुबंध का उल्लेख किया गया है तो यह केवल एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में हो सकता है।

5.2. वास्तव में, अधिनियम में यह निर्धारित नहीं किया गया है कि यदि फर्म एक अपंजीकृत फर्म है तो उस फर्म द्वारा किसी तीसरे पक्ष के साथ किए गए लेनदेन या अनुबंध कानून की नजर में गलत हैं। दूसरी ओर, यदि फर्म मुकदमे की तारीख पर पंजीकृत नहीं है और मुकदमा अपने व्यवसाय के दौरान तीसरे पक्ष-प्रतिवादी के साथ अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए है, तो वादी के पास उपचार होगा कि वह वादपत्र को अनुमति से वापस ले ले और परिसीमा के कानून के अधीन और परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधानों के अधीन नया दावा फर्म को पंजीकृत करवाकर दायर करे। ऐसा तब भी होता है जब औपचारिक रूप से

मुकदमा खारिज कर दिया जाता है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 तभी उपलब्ध रहेगी जब मुकदमा विफल हो गया हो क्योंकि गैर पंजीकरण का दोष परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 में "समान प्रकृति के अन्य कारण" शब्दों के अंतर्गत आता है।

सूरजमल दागदुरमजी शाप बनाम श्रीकिशन राम किशन, एआईऔर (1973) बीआएम 313, संदर्भित।

6. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुकदमा वैधानिक अधिकार ट्रेड एंड मर्चेंडाइज मार्क्स एक्ट, 1958 के तहत के उल्लंघन पर आधारित है। यह पासिंग ऑफ कार्यों पर लागू अपकृत्य के सामान्य विधिक सिद्धांतों पर भी आधारित है। यह मुकदमा फर्म के व्यापारिक लेनदेन के दौरान तीसरे पक्ष के साथ अपंजीकृत फर्म द्वारा या उसकी ओर से किए गए संविदा से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए नहीं है। इसलिए मुकदमा धारा 69 (2) द्वारा वर्जित नहीं है।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्या 1786/2000.

1999 के एफ.ए.आ. संख्या 365 में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 30-11-1999 से।

अशोक एच.देसाई, और.एफ. नरीमन, और.के. जैन, डी. जैन, और.के. अग्रवाल और तरूण जौहरी अपीलकर्ता की और से।

गोपाल सुब्रमण्यम, लाला राम गुप्ता, एम. राणा, श्रीमती सुमिता मुखर्जी और राणा मुखर्जी प्रतिवादीगण की और से

एम. जगन्नाध राव, जे. द्वारा इस न्यायालय का निर्णय सुनाया गया। अनुमति दी गई।

यह अपील दो प्रतिवादीगण, मैसर्स हल्दीराम भुजियावाला और श्री अशोक कुमार ने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले एफएओ 365/1999 दिनांक 30-11-1999 के खिलाफ दायर की है। उक्त आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय ने आईए 5996/99 में वाद संख्या 635/92 में विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 02-11-1999 के आदेश के खिलाफ अपीलकर्ताओं की अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया। औईए अपीलकर्ताओं द्वारा आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत दो वादीगण आनंद कुमार व दीपक कुमार, जो हल्दीराम भुजियावाला और शिव किशन अग्रवाल के रूप में व्यापार करते हैं, द्वारा दायर वाद को नामंजूर करने के लिए इस आधार पर दायर की गई थी कि पहला वादी एक साझेदारी फर्म है जो फर्मों के रजिस्ट्रार के समक्ष दावा दायरी की दिनांक 10-12-1991 को पंजीकृत नहीं थी और दिनांक 29-05-1992 को फर्म को पंजीकृत कराने से वाद के बाद पंजीकरण से प्रारंभिक दोष ठीक नहीं होगा।

वादी द्वारा (1) प्रतिवादियों, अपीलकर्ताओं, उनके साझेदारों, नौकरों आदि को ट्रेडमार्क नंबर 285062 का उल्लंघन करने और ट्रेडमार्क नाम

"हल्दीराम भुजिया वाला" या किसी भी समान नाम का उपयोग करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा (2) 6 लाख रुपये की क्षति के लिए और (3) सामग्री आदि को नष्ट करने के लिए, मुकदमा दायर किया गया था।

चूंकि हम आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत उत्पन्न होने वाले मामले से निपट रहे हैं इसलिए वादपत्र में किये गये अभिवचनों का उल्लेख करना आवश्यक होगा। एक गंगा राम उर्फ हल्दीराम, ने वर्ष 1941 से हल्दीराम भुजिया वाला के नाम से कारोबार किया। 1965 में, उन्होंने अपने दो बेटों मूलचंद, शिव किशन और अपनी बहू कमला देवी (अन्य बेटे औरएल अग्रवाल की पत्नी) के साथ उक्त नाम से कारोबार करने की साझेदारी की। दिसंबर 1972 में, उक्त फर्म ने हल्दीराम भुजिया वाला- चांद मल- गंगा बिशन भुजियावाला, बीकानेर नाम से पंजीकरण के लिए ट्रेड मार्क्स रजिस्ट्रार के समक्ष पंजीकरण के लिए आवेदन किया। ट्रेड मार्क्स रजिस्ट्रार ने नंबर 285062 के साथ पंजीकरण प्रदान किया। दिनांक 16-11-1974 को साझेदारी समाप्त की गई और विघटन विलेख की शर्तों के तहत उपरोक्त ट्रेड मार्क विशेष रूप से पश्चिम बंगाल को छोड़कर पूरे देश के लिए मूलचंद पुत्र गंगा बिशन और वादीगण के पिता के हिस्से में आ गया। इस प्रकार श्री मूलचंद उक्त क्षेत्र में ट्रेडमार्क के एकमात्र मालिक बन गए जबकि श्रीमती कमला देवी को पश्चिम बंगाल के लिए ट्रेडमार्क अधिकारों का स्वामित्व दिया गया। ऐसा कहा गया है कि श्री लाला गंगा बिशन हल्दी

राम ने अपनी अंतिम वसीयत दिनांक 03-04-1979 को निष्पादित की और संबंधित पक्षों को विघटन विलेख द्वारा प्रदत्त अधिकारों को भी दोहराया। 1980 में गंगा बिशन की मृत्यु हो गई। बाद में उनकी वसीयत के अनुसार कार्रवाई की गई। बाद में, वसीयतकर्ता के बेटे, श्री मूलचंद की भी 1985 में मृत्यु हो गई और उनके पीछे उनके चार बेटे शिव किशन, शिव रतन, मनोहर लाल और मधुसूदन रह गए। इन सभी ने अपना नाम बाद में संयुक्त मालिक के रूप में दर्ज करवाया। बाद में तीन ने 1983 में एक साझेदारी बनाई और हल्दीराम भुजिया वाला के उपरोक्त ट्रेडमार्क के तहत विभिन्न सामान बेचने वाली चांदनी चौक, नई दिल्ली में एक दुकान चला रहे थे। इस बीच, 10-10-1977 को मूलचंद के भाई श्री औरएल अग्रवाल (कमला देवी के पति) और उनके बेटे प्रभु शंकर, ने कलकत्ता में स्वयं को उक्त ट्रेडमार्क का पूर्ण मालिक होने का दावा करते हुए बिना विघटन विलेख दिनांक 16-11-74 के बारे में बताए उक्त ट्रेडमार्क के नाम से पंजीकरण के लिए आवेदन किया। जब रजिस्ट्रार ने 14-04-78 को आपत्ति जताई तो उन्होंने 18-07-78 को जवाब दिया कि वे अकेले ही कलकत्ता में इस नाम से व्यापार कर रहे हैं। प्रतिवादीगण को कलकत्ता से बाहर उक्त व्यापार का उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। वादी का पंजीकृत ट्रेडमार्क, सामान्य प्रक्रिया में, दिनांक 29-12-86 से 28-12-93 तक नवीनीकृत किया गया था। वादी ने पूर्व अभिग्रहण करने और लंबे उपयोगकर्ता के कारण भी अधिकार हासिल कर लिया है। पहली वादी फर्म, जिसमें मूलचंद के तीन

बेटे शामिल हैं और दूसरा वादी (मूलचंद का चौथा बेटा) ट्रेडमार्क के (पश्चिम बंगाल को छोड़कर) संयुक्त मालिक हैं। पहली प्रतिवादी फर्म एक गठित फर्म है जो अपना व्यवसाय शुरू करने का इरादा रखती है और इसका गठन कमला देवी के बेटे अशोक कुमार द्वारा किया गया है। दूसरा प्रतिवादी स्वयं व्यक्तिगत हैसियत से अशोक कुमार है। उन्हें पश्चिम बंगाल के बाहर इस ट्रेडमार्क का उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। वादी को दिसंबर 1991 में प्रतिवादी 1 और 2 द्वारा ट्रेड मार्क के 1254 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स [2000] 1 एस. सी. और. उल्लंघन के बारे में पता चला जब प्रतिवादियों ने और्य समाज रोड, करोल बाग, नई दिल्ली में एक दुकान खोली। मुकदमे के लिए कार्रवाई का वाद कारण यह है कि प्रतिवादी ने :

"वादी के सामान्य विधि और संविदात्मक अधिकारों का उल्लंघन।" किया।

इन आधारों पर, प्रतिवादीगण को ट्रेडमार्क के इस्तेमाल करने से जरिये स्थायी निषेधाज्ञा पाबंद किया जाना तथा 6 लाख रूपये क्षति के रूप में दिलवाया जाना चाहिए।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, प्रतिवादीगण ने, आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर प्रार्थनी की कि भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 (2) के तहत दावा वर्जित है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त प्रार्थना पत्र को इस अाधार पर खारिज किया कि

दिल्ली उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा मैसर्स वीरेंद्र ड्रेसर्स दिल्ली बनाम मैसर्स वरिंदर गारमेंट्स एआईऔर (1982) दिल्ली 482 और मैसर्स बेस्टोकेम फॉरमैलिटीज़ बनाम मैसर्स दिनेश आयुर्वेदिक एजेंसीज और अन्य औरएफए (ओएस) 17/99 दिनांक 12-07-1999 में अभिनिर्धारित किया था कि वादी के ट्रेड मार्क के संबंध में प्रतिवादीगण को निषेधाज्ञा से पाबंद करना पासिंग ऑफ एक्शन पर लागू सिद्धांतों पर आधारित था तथा उक्त अधिकार सामान्य विधि का अधिकार था और किसी अनुबंध के तहत उत्पन्न नहीं हुआ था। विद्वान न्यायाधीश ने अपने फैसले में इस न्यायालय के मैसर्स राप्टाकोस ब्रेट एंड कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश प्रॉपर्टी, (1998) 7 एससीसी 184 पर भी रिलाय किया। आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन दिनांक 02-11-1999 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस आदेश की पुष्टि दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 30-11-1999 को की, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है।

इस अपील में, अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री अशोक देसाई और श्री औरएफ नरीमन ने तर्क दिया कि पहली वादी फर्म मुकदमे की तारीख पर फर्म रजिस्ट्रार के समक्ष पंजीकृत नहीं थी, वाद में बार-बार दिवंगत मूलचंद के मालिकाना अधिकार का उल्लेख किया गया था जो विघटन विलेख दिनांक 16-11-1974 से उत्पन्न हुआ था और उक्त दस्तावेज़ के संदर्भ के बिना- जो एक संविदा थी- वादीगण मूलचंद के माध्यम से

व्यापार चिह्न पर अपना अधिकार साबित नहीं कर सके और दावा वर्जित था क्योंकि धारा 69(2) "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार का उल्लेख करती है। वादी का अधिकार दिनांक 16-11-74 के अनुबंध पर आधारित था। "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्द रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पियरी लाल कुमार और अन्य (1952) एससीऔर 501 में प्रयुक्त "एक अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों के समान थे जिसमें एक मध्यस्थता खंड के संबंध में उन शब्दों का अर्थ लगाते समय, इस न्यायालय ने माना कि उक्त शब्दों का व्यापक रूप से अर्थ लगाया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि, इस मामले के तथ्यों पर और जैसा कि कई स्थानों पर वादपत्र में कहा गया है, पहले वादी को व्यापार चिह्न पर स्वामित्व साबित करने के लिए और इस प्रकार निषेधाज्ञा के लिए दिनांक 16-11-74 के विघटन के अनुबंध पर भरोसा करने के लिए मजबूर किया गया था और इसलिए यह सामान्य कानून के तहत या किसी भी क़ानून, जैसे ट्रेड मार्क्स अधिनियम के तहत दावा किया गया अधिकार नहीं था ।

दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण-वादीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री गोपाल सुब्रमण्यम ने यह तर्क देकर उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण का समर्थन किया कि निषेधाज्ञा का मुकदमा दो अधिकारों पर आधारित था, एक पूर्व पंजीकरण से उत्पन्न ट्रेड मार्क्स अधिनियम के तहत वैधानिक था और वैकल्पिक रूप से, यह मुकदमा पासिंग ऑफ कार्रवाई में उपलब्ध

सामान्य कानून के अधिकार पर भी आधारित था। यह मुकदमा वादी और प्रतिवादी के बीच किसी अनुबंध पर आधारित नहीं था। धारा 69(2) में प्रावधान लागू नहीं होता यदि लागू किया जाने वाला अधिकार वादी की फर्म और प्रतिवादीगण के बीच अनुबंध से उत्पन्न नहीं हुआ। वादपत्र में 16-11-74 के विघटन विलेख का संदर्भ केवल एक ऐतिहासिक तथ्य का संदर्भ था कि वह मूलचंद के अधिकार का स्रोत था और उनकी मृत्यु पर, व्यापार चिह्न का उक्त अधिकार उनके बेटों को हस्तांतरित हो गया- जिनमें से तीन बेटे एक फर्म (जो कि प्रथम वादी) में शामिल हो गए हैं और चौथा बेटा दूसरा वादी है। वादीगण विघटन विलेख में पक्षकार नहीं थे। प्रतिवादीगण भी विघटन विलेख में पक्षकार नहीं थे, हालांकि उनकी मां थीं। इसलिए, धारा 69(2) के तहत रोक लागू नहीं होती ।

विचार के लिए जो बिंदु सामने आते हैं वे हैं-

(१) क्या धारा 69(2) किसी फर्म द्वारा मुकदमे को रोकती है जो मुकदमे की तारीख पर पंजीकृत नहीं है जहां वैधानिक अधिकार के रूप में व्यापार चिह्न के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा और क्षति का दावा किया जाता है या सामान्य कानून सिद्धांतों, जो कि पासिंग ऑफ एक्शन पर लागू होते हैं, का आह्वान किया जाए?

(२) क्या धारा 69(2) में "अनुबंध से उत्पन्न" शब्द केवल उस स्थिति को संदर्भित करते हैं जहां एक अपंजीकृत फर्म अपने व्यवसाय के

दौरान प्रतिवादी के साथ फर्म द्वारा किए गए अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू कर रही है या क्या धारा 69(2) के तहत रोक को मुकदमे की संपत्ति के स्वामित्व के स्रोत के रूप में प्रतिवादी से असंबद्ध वादपत्र में निर्दिष्ट किसी भी अनुबंध तक बढ़ाया जा सकता है?

बिंदु 1 :यह प्रश्न कि क्या धारा 69(2) एक अपंजीकृत फर्म द्वारा दायर मुकदमे पर रोक है भले ही वैधानिक अधिकार लागू किया जा रहा हो या भले ही केवल सामान्य कानून अधिकार लागू 1256 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स [2000] 1 एस. सी. और. किया जा रहा हो, इस न्यायालय में सीधे विचार के लिए मैसर्स राप्टोकस ब्रेट कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश प्रॉपर्टी, (1998) 7 एससीसी 184 में आया। उस मामले में, मजमुदार, जे. ने बेंच के लिए प्रकट करते हुए स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया कि धारा 69(2) वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून अधिकार के संबंध में अपंजीकृत फर्म एक मुकदमे के माध्यम से प्रवर्तन पर रोक नहीं लगा सकती है। उस मामले के तथ्यों पर, यह माना गया कि लीज की समाप्ति पर किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार "अनुबंध से उत्पन्न" होने वाला अधिकार नहीं था, बल्कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत एक सामान्य कानून अधिकार या वैधानिक अधिकार था। तथ्य यह है कि उस मामले में वादपत्र में लीज और उसकी समाप्ति का उल्लेख था, इससे कोई भिन्नता नहीं होती। इसलिए, उक्त वाद को वर्जित नहीं माना गया।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उस मामले में वादपत्र में लीज के संदर्भ को स्पष्ट रूप से एक ऐतिहासिक तथ्य माना गया था। इसलिए यह मामला सीधे तौर पर प्रासंगिक है। उक्त निर्णय के बाद, वर्तमान मामले में भी यह माना जाना चाहिए कि यदि कोई वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून अधिकार लागू किया जा रहा है तो कोई मुकदमा धारा 69(2) द्वारा वर्जित नहीं है।

अगला प्रश्न इस मुकदमे में लागू किये जा रहे अधिकार की प्रकृति के बारे में है। यह सुस्थापित है कि पासिंग ऑफ एक्शन अपकृत्य पर आधारित एक सामान्य कानून कार्रवाई है। (जरिये) बंगाल वॉटरप्रूफ लिमिटेड बनाम बॉम्बे वॉटरप्रूफ मैन्युफैक्चरिंग कंपनी और अन्य, (1997) 1 एससीसी 99। इसलिए, हमारे मत में, प्रतिवादी को वादी के व्यापार चिह्न का उपयोग करके और प्रतिवादी के सामान को वादी के सामान के रूप में हस्तांतरित न करने और क्षति के लिए प्रतिवादी को रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा का मुकदमा सामान्य कानून में एक कार्रवाई है और धारा 69 (2) द्वारा वर्जित नहीं है। मैसर्स वीरेंद्र ड्रेसेज़ दिल्ली बनाम मैसर्स वरिंदर गारमेंट्स, एआईऔर (1983) दिल्ली 482 के निर्णय में और दिल्ली उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के मैसर्स बेस्टोकेम फॉर्मूलेशन बनाम मैसर्स दिनेश आयुर्वेदिक एजेंसियां और अन्य, औरएफए (ओएस) 17/99 दिनांक 12-07-99) के निर्णय में कहा गया है कि धारा 69(2) पासिंग ऑफ़

एक्शन पर लागू नहीं होती है क्योंकि मुकदमा अपकृत्य पर आधारित है न कि अनुबंध पर। हमारी राय में, उपरोक्त निर्णय सही ढंग से लिए गए थे। (विशेष अनुमति याचिका नंबर 18418 ऑफ 1999 बाद वाले के खिलाफ वास्तव में 28-01-2000 को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई थी।) अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निस्संदेह रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पियरी लाल कुमार और अन्य (1952) एससीऔर 501 मामले पर भरोसा किया। वह एक मध्यस्थता मामला था जिसमें "अनुबंध से उत्पन्न" शब्दों की व्यापक रूप से व्याख्या की गई थी, लेकिन हमारे विचार में, उस निर्णय की "अनुबंध से उत्पन्न" शब्दों की व्याख्या साझेदारी अधिनियम की धारा 69(2) में कोई प्रासंगिकता नहीं है। ।

इसी तरह, यदि किसी पंजीकृत व्यापार चिह्न और उसके उल्लंघन के आधार पर स्थायी निषेधाज्ञा या क्षतिपूर्ति की राहत का दावा किया जा रहा है, तो मुकदमे को व्यापार चिह्न अधिनियम के तहत वैधानिक अधिकार के आधार पर माना जाना चाहिए और हमारे विचार में, यह धारा 69(2) द्वारा वर्जित नहीं है।

उपरोक्त कारणों से. इन दोनों स्थितियों में, हमारे सामने मौजूद मामले में अपंजीकृत साझेदारी को "अनुबंध से उत्पन्न" किसी भी अधिकार को लागू करने वाला नहीं कहा जा सकता है। इसलिए बिंदु 1 का निर्णय वादीगण-प्रत्यर्थीण के पक्ष में किया जाता है।

बिंदु 2:हालाँकि प्रश्न उठता है कि धारा 69(2) में प्रयुक्त "अनुबंध के तहत उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करना" शब्दों का दायरा क्या है? अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बार-बार विभिन्न स्थानों पर वादपत्र में किए गए अभिवचन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया कि यह केवल 16-11-1974 के विघटन विलेख के तहत था मूलचंद,- पहली वादी फर्म के भागीदारों और दूसरे वादी के पिता- पूरे भारत (पश्चिम बंगाल को छोड़कर) पर ट्रेडमार्क का मालिक बन गये। मूलचंद की मृत्यु पर वादी पक्ष पर वह अधिकार विकसित हो गया। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि पहली वादी फर्म निश्चित रूप से "एक अनुबंध से उत्पन्न" अधिकार को लागू करने की मांग कर रही थी, अर्थात्, विघटन का अनुबंध दिनांक 16-11-74। यह तर्क दिया गया कि पहला वादी तब तक किसी भी निषेधाज्ञा या क्षति का दावा नहीं कर सकता जब तक कि उक्त अनुबंध पर भरोसा नहीं किया गया था और इसलिए मुकदमा धारा 69(2) द्वारा वर्जित था ।

इस बिंदु को तय करने के उद्देश्य से, इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है कि जब विधायिका ने धारा 69(2) में "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों का उपयोग किया तो उसका क्या मतलब था।

हमारे विचार में, इस संदर्भ में विशेष समिति (1930-31) की रिपोर्ट का उल्लेख करना उपयोगी होगा जिसने विधेयक के मसौदे की जांच की और विधायिका को सिफारिशें कीं।

साझेदारी अधिनियम, 1932 से पहले की विशेष समिति की उपरोक्त रिपोर्ट पर जाने से पहले, आयकर आयुक्त, एपी बनाम जयलक्ष्मी चावल और तेल मिल्स ठेकेदार कंपनी, (1971) 1 एससीसी 280 मामले का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जहां इस न्यायालय ने साझेदारी अधिनियम की धारा 59 की व्याख्या के लिए इसी रिपोर्ट को संदर्भित करने से इनकार कर दिया। लेकिन, हमारे विचार में, वह निर्णय अब अच्छा कानून नहीं है क्योंकि औरएस नायक बनाम एऔर अंतुले (1984) 2 एससीसी 183 में संविधान पीठ के फैसले में इस पहलू पर स्पष्ट रूप से असहमति थी। बाद के कई निर्णयों में, इस न्यायालय ने समान समितियों या आयोगों की रिपोर्टों का उल्लेख किया है (जीपी सिंह की व्याख्या की क़ानून, 7वां संस्करण, पृष्ठ 196-197)। हैदराबाद इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ (1995) 5 एससीसी 15 पैरा 15, के नवीनतम मामले में, विधायिका के इरादे को समझने के लिए संविधान पीठ द्वारा खंडों के नोट्स 1258 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स [2000] 1 एस. सी. और. पर निर्भरता दिखाई थी। पेपर बनाम हार्ट, (1993) 1 ऑल ईऔर 42 (एचएल) के बाद ऐसी सामग्री की स्वीकार्यता के पक्ष में अंग्रेजी कानून पूरी तरह से बदल गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पीवी नरसिम्हाराव बनाम राज्य में, (1998) 4 एससीसी 626 (एट 691-692) में एक प्रतिबंधित दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था कि ऐसी रिपोर्टों को ऐतिहासिक आधार जानने के उद्देश्य से देखा जा सकता है या रिष्टि को दूर करने की कोशिश की जा सकती है, लेकिन

जब तक अस्पष्टता न हो तब तक प्रावधान की व्याख्या नहीं की जानी चाहिए। इस प्रतिबंधित दृष्टिकोण से भी, हम पाते हैं कि धारा 69 (2) (1916 और 1985 के अंग्रेजी क़ानून के भिन्न) में काफी अस्पष्टता है कि "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों का क्या मतलब है क्योंकि प्रावधान यह नहीं बताता है कि धारा 69 (2) में अनुबंध फर्म द्वारा प्रतिवादी के साथ किया गया है या किसी अन्य व्यक्ति के साथ किया गया है जो प्रतिवादी नहीं है, न ही यह व्यवसाय में प्रतिवादी के साथ किया गया अनुबंध है या व्यवसाय से असंबद्ध है। इसलिए, हमारे विचार में, धारा 69(2) की व्याख्या के उद्देश्य से भी रिपोर्ट पर गौर करना स्वीकार्य है।

हम कह सकते हैं कि विशेष समिति की रिपोर्ट के आधार पर ही भागीदारी अधिनियम, 1932 को बाद में विधायिका द्वारा पारित किया गया था। समिति में सर ब्रोजेंद्र लाल मित्तर, सर दिनशाह एफ. मुल्ला, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्री और्थर एगर शामिल थे। रिपोर्ट के पैरा 16 में कहा गया है कि विधेयक पंजीकरण को वैकल्पिक बनाकर, और पंजीकरण करने के लिए प्रलोभन पैदा करके कठिनाई के इस वर्ग को दूर करने का प्रयास करता है, जिसका असर केवल व्यवसाय के पर्याप्त और काफी स्थायी तरीके से फर्मों पर पड़ेगा। रिपोर्ट के पैरा 17, 18 और 19 महत्वपूर्ण हैं। (मुल्ला, पार्टनरशिप एक्ट, प्रथम संस्करण 1934, पृष्ठ 167 पीपी एट पृष्ठ संख्या 176-177 पर देखें।) पैरा 17 अंगीकृत करता है।

"17" योजना की रूपरेखा संक्षेप में इस प्रकार है। अंग्रेजी मिसाल, जहां तक यह पंजीकरण को अनिवार्य बनाता है और गैर-पंजीकरण के लिए जुर्माना लगाता है, का पालन नहीं किया गया है, क्योंकि यह माना जाता है कि यह भारत में शुरुआत करने के लिए एक कठोर कदम होगा, और छोटे या अल्पकालिक उपक्रमों से जुड़ी सभी कठिनाइयों का परिचय देगी। इसके बजाय, यह प्रस्तावित है कि पंजीकरण पूरी तरह से संबंधित फर्म या भागीदार के विवेक के अंतर्गत होना चाहिए, लेकिन, अंग्रेजी मिसाल को दृष्टिगत रखते हुए, कोई भी फर्म जो पंजीकृत नहीं है सिविल कोर्ट में तीसरे पक्ष के खिलाफ अपने दावे को लागू करने में असमर्थ होगी; और जो भागीदार हल्दीराम भुजियावाला बनाम आनंद कुमार 1259 पंजीकृत नहीं है वह तीसरे पक्ष या साथी भागीदारों के खिलाफ अपने दावों को लागू करने में असमर्थ होगा।

यह देखा जाएगा कि उपरोक्त उद्धरण अंग्रेजी मिसाल को संदर्भित करता है जिसका आंशिक रूप से पालन नहीं किया जाता है और जिसका आंशिक रूप से पालन किया जाता है। हम शीघ्र ही उक्त अंग्रेजी मिसाल का उल्लेख करेंगे, लेकिन ऐसा करने से पहले, हमें उक्त रिपोर्ट के पैरा 18 और 19 का भी उल्लेख करना होगा।

रिपोर्ट पैरा 18, 19 में इस प्रकार बताती है-

"18" एक बार पंजीकरण प्रभावी हो जाने के बाद फर्म के गठन के संबंध में रजिस्टर में दर्ज किये गये तथ्य उसे बनाने वाले साझेदारों के खिलाफ उसमें मौजूद तथ्यों का निर्णायक सबूत होगा और किसी भी साझेदार को, जिसका नाम रजिस्टर में है, इनकार करने की अनुमति नहीं दी जाएगी कि वह एक भागीदार है- कुछ प्रोकृतिक और उचित अपवादों के साथ जिन्हें बाद में दर्शाया जाएगा। इससे फर्मों के साथ काम करने वाले व्यक्तियों को साझेदारी के झूठे इनकार और फर्म के महत्वपूर्ण सदस्यों द्वारा दायित्व की चोरी के खिलाफ एक मजबूत सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।"

19 दूसरी ओर, एक तीसरा पक्ष जो किसी फर्म के साथ लेनदेन करता है और जानता है कि एक नया भागीदार जुड़ा है वह या तो नए भागीदार के पंजीकरण को आगे के लेनदेन में एक शर्त बना सकता है या अन्य साझेदारों की निश्चित सुरक्षा और अन्य सबूतों से साबित करने का मौकाए, नए लेकिन अपंजीकृत साझेदार की साझेदारी के साथ खुद को संतुष्ट करना। एक तीसरा पक्ष जो किसी नए साझेदार के शामिल होने की जानकारी के बिना किसी फर्म के साथ सौदा करता है, केवल पुराने साझेदारों के क्रेडिट पर निर्भर करता है और नए साझेदारों के पंजीकरण में विफलता से पूर्वाग्रहग्रस्त नहीं होगा।"

इसी प्रकार, पैरा 23 भी उन लोगों को संदर्भित करता है जो फर्म के साथ सौदा करते हैं।

पैरा 17 में उल्लिखित अंग्रेजी मिसाल, जिसका आंशिक रूप से पालन नहीं किया गया है, लेकिन धारा 69(2) का मसौदा तैयार करने में आंशिक रूप से पालन किया गया है, वह व्यवसाय नाम पंजीकरण अधिनियम, 1916 में वर्णित है। उक्त अधिनियम की धारा 7 पंजीकरण में चूक पर दंड का उल्लेख करती है। जैसा कि रिपोर्ट में कहा गया है, उस अधिनियम का दंड 1260 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स [2000] 1 एस. सी. और. भाग भारत में लागू नहीं किया गया है, लेकिन डिफ़ॉल्ट फर्म के रास्ते में विकलांगता पैदा करने वाली धारा 8 के प्रावधानों को अपनाया गया है। उपरोक्त अंग्रेजी अधिनियम की धारा 8 प्रासंगिक है और यह कहती है:

"उस व्यवसाय के संबंध में ऐसे डिफॉल्टर द्वारा या उसकी ओर से किए गए या किए गए किसी भी अनुबंध के तहत या उससे उत्पन्न होने वाले उस डिफॉल्टर के अधिकार, जिसके संचालन के संबंध में विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक था" (हेल्सबरी क़ानून, 3 संस्करण वॉल्यूम 37, पेज 867 देखें)

उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जिस अधिकार को अपंजीकृत फर्म द्वारा लागू करने की मांग की गई है और जो वर्जित है, वह फर्म के व्यावसायिक लेनदेन के संबंध में किसी तीसरे पक्ष- प्रतिवादी के साथ अनुबंध से उत्पन्न होने वाला अधिकार होना चाहिए।

व्यवसाय नाम अधिनियम, 1985 ने 1916 के उपरोक्त अधिनियम का स्थान ले लिया है और नए अधिनियम की धारा 4 "धारा 4 के उल्लंघन के लिए नागरिक उपचार" को संदर्भित करती है। यदि फर्म पंजीकृत नहीं है तो यह "किसी व्यवसाय के दौरान किए गए अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए" कार्रवाई को खारिज करने का प्रावधान करता है। (हेल्सबरी क़ानून, 4 संस्करण वॉल्यूम 48, पेज 101 देखें)

उपरोक्त रिपोर्ट और अंग्रेजी अधिनियम के प्रावधान, हमारे विचार में, यह स्पष्ट करते हैं कि धारा 69(2) के पीछे का उद्देश्य अपंजीकृत फर्म या उसके भागीदारों पर वादी फर्म के द्वारा तीसरे पक्ष/प्रतिवादी से अनुबंध के अंतर्गत उत्पन्न हुए अधिकारों को लागू करने के लिए विकलांगता लागू करना था।

राप्टोकास ब्रेट एंड कंपनी, (1998) 7 एससीसी 184 में यह स्पष्ट किया गया था कि संविदात्मक अधिकार जिन्हें वादी फर्म द्वारा लागू करने की मांग की गई है और जो धारा 69(20 के तहत वर्जित हैं, वे "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार" हैं और वह यह फर्म द्वारा तीसरे पक्ष प्रतिवादीगण के साथ किया गया एक अनुबंध होना चाहिए। मजमुदार, जे. ने (पृष्ठ 191 पर) इस प्रकार कहा :

उपरोक्त प्रावधान पर एक नज़र डालने से पता चलता है कि एक अपंजीकृत फर्म द्वारा किसी तीसरे पक्ष के साथ अनुबंध से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए उसके खिलाफ दायर किया गया मुकदमा वर्जित होगा।.....

उपरोक्त परिच्छेद से सबसे पहले यह स्पष्ट है कि अनुबंध वादी फर्म द्वारा किसी और के साथ नहीं बल्कि तीसरे पक्ष प्रतिवादी के साथ अनुबंध होना चाहिए।

आगे और अतिरिक्त लेकिन समान रूप से महत्वपूर्ण पहलू जिसे स्पष्ट किया जाना चाहिए वह यह है कि- धारा 69(2) में निर्दिष्ट अपंजीकृत फर्म द्वारा अनुबंध न केवल तीसरे पक्ष- प्रतिवादी के साथ किया जाना चाहिए, बल्कि यह भी होना चाहिए वादी फर्म द्वारा ऐसे तीसरे पक्ष- प्रतिवादी के साथ वादी फर्म के व्यापारिक व्यवहार के दौरान किया गया समझौता हो।

यह भी देखा जाएगा कि वर्तमान प्रतिवादी जिन पर वादी फर्म द्वारा मुकदमा दायर किया गया है, वे पहली वादी फर्म के तीसरे पक्ष हैं। अधिनियम की धारा 2(डी) "तीसरे पक्ष" को ऐसे व्यक्तियों के रूप में परिभाषित करती है जो फर्म के भागीदार नहीं हैं। वर्तमान मामले में प्रतिवादी दिनांक 16-11-74 के विघटन अनुबंध के तीसरे पक्ष भी हैं। उनकी मां, कमला देवी निस्संदेह विघटन के अनुबंध में एक पक्ष थीं। प्रतिवादी

केवल उस अधिकार का दावा कर रहे हैं जो दिनांक 16-11-74 के उक्त अनुबंध के तहत उनकी मां को और फिर प्रतिवादीगण को प्राप्त हुआ है। वास्तव में, विघटन का उक्त अनुबंध ऐसा अनुबंध नहीं है जिसमें वर्तमान पहली वादी फर्म या उसके भागीदार या दूसरा वादी भी पक्षकार थे। उनके पिता मूलचंद एक पक्षकार थे और ट्रेडमार्क पर उनका अधिकार वादीगण में निहित हुआ था। प्रश्न का वास्तविक सार यह है कि विधायिका ने जब धारा 69(2) में "अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्द का उपयोग किया है, तो वह अपंजीकृत वादी फर्म द्वारा अपने ग्राहकों- प्रतिवादीगण के साथ व्यापार लेनदेन के दौरान किए गए अनुबंध का उल्लेख कर रही है और इसका विचार वाणिज्य में उन लोगों की रक्षा करना है जो व्यवसाय में ऐसी साझेदारी फर्म के साथ काम करते हैं। ऐसे तीसरे पक्ष जो साझेदारों के साथ सौदा करते हैं, उन्हें व्यापार में सौदा करने से पहले यह जानने में सक्षम बनाया जाना चाहिए कि फर्म के नाम क्या हैं।

इसके अलावा धारा 69(2) फर्म के स्वामित्व वाली संपत्ति के स्वामित्व के स्रोत के रूप में वादपत्र में उल्लिखित किसी भी अनुबंध पर लागू नहीं होती है। यदि वादपत्र में ऐसे किसी अनुबंध का उल्लेख किया गया है तो यह केवल एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि अपंजीकृत फर्म द्वारा दायर वादपत्र मोटर कार पर फर्म के स्वामित्व के स्रोत को संदर्भित करता है और बताता है कि वादी ने

एक अनुबंध के तहत एक विदेशी खरीदार से मोटर कार खरीदी और प्राप्त की है और प्रतिवादी ने वादी फर्म के कब्जे से इसे अनधिकृत रूप से हटा दिया है,- यह स्पष्ट है कि मुकदमे में प्रतिवादी के खिलाफ कब्जे की राहत प्रतिवादी के साथ वादी फर्म के व्यवसाय के दौरान किए गए किसी भी अनुबंध से उत्पन्न नहीं होती है, बल्कि कथित तौर पर वाहन को वादी फर्म की अभिरक्षा से प्रतिवादी द्वारा अनधिकृत रूप से हटाने पर आधारित है। ऐसी स्थिति में, तथ्य यह है कि अपंजीकृत फर्म ने अनुबंध के तहत किसी और से वाहन खरीदा है, वाहन के कब्जे के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा करने के फर्म के अधिकार पर कोई असर नहीं पड़ता है। ऐसा मुकदमा चलने योग्य होगा और धारा 69(2) उस 1262 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स [2000] 1 एस. सी. और. पर रोक नहीं लगा सकता, भले ही फर्म मुकदमे की तारीख पर अपंजीकृत हो। मौजूदा मामले में स्थिति अलग नहीं है।

वास्तव में, अधिनियम में यह निर्धारित नहीं किया गया है कि यदि फर्म एक अपंजीकृत फर्म है तो किसी फर्म द्वारा किसी तीसरे पक्ष के साथ किए गए लेनदेन या अनुबंध कानून की नजर में गलत हैं। दूसरी ओर, यदि फर्म मुकदमे की तारीख पर पंजीकृत नहीं है और मुकदमा अपने व्यवसाय के दौरान तीसरे पक्ष-प्रतिवादी के साथ अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए है, तो वादी के पास उपचार होगा कि

वह वादपत्र को अनुमति से वापस ले ले और परिसीमा के कानून के अधीन और परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधानों के अधीन नया दावा फर्म को पंजीकृत करवाकर दायर करे। ऐसा तब भी होता है जब औपचारिक रूप से मुकदमा खारिज कर दिया जाता है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 तभी उपलब्ध रहेगी जब मुकदमा विफल हो गया हो क्योंकि गैर पंजीकरण का दोष परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 में "समान प्रकृति के अन्य कारण" शब्दों के अंतर्गत आता है। सूरजमल दगडुरामजी शॉप बनाम मैसर्स श्रीकिशन राम किशन, एऔईऔर (1973) बा म. 313 देखें।

ऊपर दिए गए सभी कारणों से, यह स्पष्ट है कि मुकदमा ट्रेड मार्क्स अधिनियम के तहत वैधानिक अधिकारों के उल्लंघन पर आधारित है। यह पारित किए जाने वाले कार्यों पर लागू टोट के सामान्य कानून सिद्धांत पर भी आधारित है। यह मुकदमा फर्म के व्यापारिक लेनदेन के दौरान तीसरे पक्ष के साथ अपंजीकृत फर्म द्वारा या उसकी ओर से किए गए अनुबंध से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए नहीं है। इसलिए मुकदमा धारा 69(2) द्वारा वर्जित नहीं है।

उपरोक्त कारणों से, अपील विफल हो जाती है और बिना किसी हर्जे पर खारिज की जाती है। यह नहीं समझा जाना चाहिए कि हमने मामले के गुण-दोष के बारे में कुछ भी कहा है क्योंकि हम मात्र आदेश 7 नियम 11

सीपीसी के प्रार्थना पत्र पर ही विचार कर रहे हैं और हमने स्वयं को मात्र वादपत्र में किये गये अभिवचनों तक ही सीमित रखा है।

अपील खारिज

डिस्क्लेमर-यह अनुवाद और्टिफिशल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी रजत गुप्ता (और.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।